प्रयोगात्मक कार्य

(खण्ड-क)

1. उद्देश्य—स्लाइड पर पराग अंकुरण का अध्ययन।

विधि—किसी पुष्प के परागकणों को एक ब्रुश की सहायता से परागकोश से पृथक् करके पेट्रीडिश में 10% शर्करा विलयन में रखते हैं। लगभग 24 घण्टे पश्चात् कुछ परागकणों को स्लाइड पर रखकर, कवर स्लिप से ढककर सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करते हैं। अथवा परागकणों को स्लाइड पर रखी 10% शर्करा घोल की बूँद में रखकर स्लाइड को पेट्रीडिश में रखकर ऊपर से ढककर लगभग 24 घण्टे के लिए रख देते हैं।

प्रेक्षण—(i) परागकण की बाह्य भित्ति मोटी **बाह्य चोल** (exine) तथा भीतरी भित्ति पतली **अन्तःचोल** (intine) है। बाह्य चोल के फटने से अन्तःचोल पराग नलिका के रूप में जनन छिद्र से बाहर निकल आती है।

(ii) पराग नलिका में दो केन्द्रक हैं। बड़ा केन्द्रक **नलिका केन्द्रक** (tube nucleus) तथा एक छोटा **जनन केन्द्रक** है।

(iii) जनन केन्द्रक विभाजित होकर दो नर युग्मक बनाता है।

(iv) पराग नलिका नर युग्मकों को अण्डाशय में स्थित बीजाण्ड में पहुँचाती है जिससे निषेचन सम्पन्न हो सके।

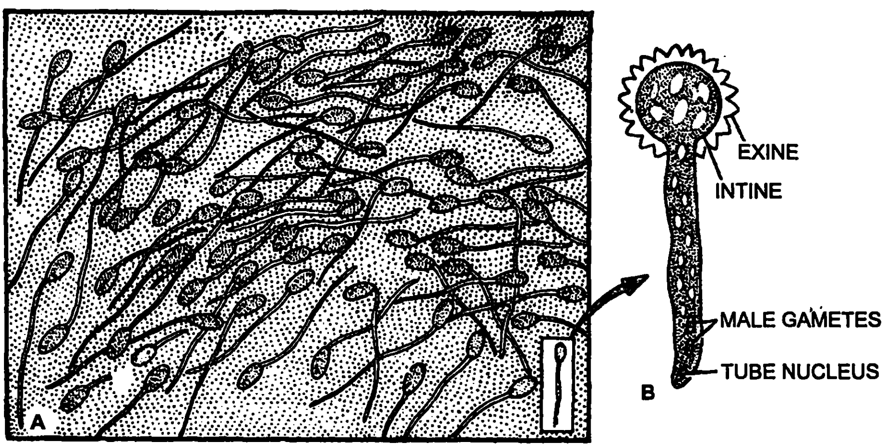

चित्र-(A) परागकणों (pollen grains) के अंकुरण (germination) की विभिन्न अवस्थाएँ, (B) एक परागकण पराग नलिका (pollen tube) सहित।

2. मृदा की बनावट, नमी, निहित वस्तुएँ, जलधारण क्षमता तथा उसमें पाए जाने वाले पौधों से सहसम्बन्ध स्थापित करना।

2.1. उद्देश्य—मृदा की बनावट का अध्ययन करना।

सामग्री—विभिन्न प्रकार की मृदा के नमूने, विभिन्न व्यास के छिद्रों वाली लोहे की छलनियाँ, मुन्सेल का मृदा रंगीन चार्ट आदि।

विधि—(i) मृदा का रंग (Soil colour)—मृदा के विभिन्न नमूनों को कार्ड-बोर्ड की अलग-अलग तख्तियों पर समान रूप से फैलाकर इनके रंग की तुलना **मुन्सेल** के मृदा रंग के चार्ट से करते हैं।

(ii) मृदा का ताप (Temperature of soil)—मृदा तापमापी की सहायता से मृदा की विभिन्न गहराइयों (जैसे—1'', 2'', 4'', 6'' 12'' आदि) की ताप भिन्नता ज्ञात करते हैं।

(iii) मृदा का गठन (Soil Texture)—शुष्क मृदा को विभिन्न व्यास वाली लोहे की छलनियों से छानते हैं। सर्वप्रथम सबसे छोटे छिद्रों वाली छलनी का प्रयोग करते हैं, फिर क्रमशः बढ़ते व्यास के छिद्रों वाली छलनियों से मृदा को छानते हैं। इससे

प्राप्त विभिन्न व्यास कणों वाली मृदा को पृथक्-पृथक् कर लेते हैं। मृदा कणों के व्यास के आधार पर इनको निम्नवत् वर्गीकृत कर लेते हैं—

क्र० सं०	मृदा कणों का व्यास	मृदा का गठन
1.	0.002 mm से कम	चिकनी मृदा (clay)
2.	0.002 mm से 0.02 mm तक	गाद (silt)
3.	0.02 mm से 0.2 mm तक	बारीक रेत (fine sand)
4.	0.2 mm से 2 mm तक	मोटी बालू (coarse sand)
5.	2 mm से अधिक	बजरी (gravel)

2.2. उद्देश्य—मृदा का pH मान ज्ञात करना।

सामग्री—विभिन्न मृदा के नमूने, परखनली, पोर्सिलेन टाइल, बेरियम सल्फेट, सार्वत्रिक सूचक आदि।

विधि—विभिन्न मृदा नमूनों को अलग-अलग परखनली में लेकर उसमें उतनी ही मात्रा बेरियम सल्फेट की तथा 15 mm जल मिलाकर, इसे अच्छी प्रकार हिलाकर व निथारकर तरल को पृथक् कर लेते हैं।

तरल की कुछ बूँदें पोर्सिलेन टाइल पर रखकर इसमें उतनी ही मात्रा में सार्वत्रिक सूचक मिलाते हैं। रंग परिवर्तन का मिलान विभिन्न pH के रंगों की पट्टी से करते हैं, जिस pH के रंग से मिलान हो जाता है, वह मृदा का pH होता है।

निष्कर्ष—मृदा में विभिन्न विलेयशील लवण पाए जाते हैं। उदासीन मृदा में लिटमस का रंग परिवर्तन नहीं होता। क्षारीय मृदा घोल में लिटमस नीला और अम्लीय मृदा में लिटमस लाल हो जाता है। सामान्यतया बगीचे की मृदा का pH मान 7, सड़क के किनारे की मृदा का pH 6.5 और खुली मृदा का pH मान 7.5 के लगभग होता है।

2.3. उद्देश्य—मृदा के नमूने में नमी की मात्रा ज्ञात करना।

सामग्री—विभिन्न प्रकार की मृदा के नमूने, भौतिक तुला, क्रूसिबल, बीकर, अवन (oven) या स्पिरिट लैम्प।

विधि—स्वच्छ एवं शुष्क क्रूसिबल को भौतिक तुला में तोलकर उसका भार ज्ञात कर लेते हैं। क्रूसिबल में एक छोटी चम्मच मृदा लेकर पुनः भार ज्ञात कर लेते हैं। इस नमूने को 24 घण्टे के लिए गर्म वायु अवन में $105 - 110°C$ ताप पर रखते हैं। इसके पश्चात् पुनः मृदा का भार ज्ञात करते है। भार की कमी मृदा में नमी की मात्रा को दर्शाती है। यह प्रक्रिया सभी नमूनों में अपनाते हैं।

निष्कर्ष—रेतीली मृदा में नमी की मात्रा बहुत कम, चिकनी मृदा में नमी का मात्रा अधिक होती है। बगीचे की मृदा में ह्यूमस के कारण नमी अधिक होती है।

2.4. उद्देश्य—विभिन्न प्रकार की मृदा की जलधारण क्षमता का अध्ययन करना।

सामग्री—मृदा के शुष्क नमूने, भौतिक तुला, छिद्रित तली वाले टिन के डिब्बे, फिल्टर पेपर आदि।

विधि—मृदा के शुष्क नमूनों को बारीक पीस लेते हैं। छिद्रित तली वाले टिन के डिब्बों (X, Y, Z) में नीचे फिल्टर पेपर लगा कर, डिब्बों का भार अलग-अलग ज्ञात कर लेते हैं। X, Y, Z डिब्बों में अलग-अलग स्थानों की पिसी हुई मृदा भरकर पुनः उनका भार ज्ञात कर लेते हैं।

X, Y, Z डिब्बों को जल से भरी पेट्रीडिश में तब तक रखते हैं जब तक मृदा की ऊपरी सतह गीली न हो जाए। डिब्बों को पेट्रीडिश से बाहर निकल लेते हैं, जब इनसे पानी का टपकना बन्द हो जाता है, तब पुनः इनका भार ज्ञात कर लेते हैं, और भार में वृद्धि का अन्तर ज्ञात कर लेते हैं।

निष्कर्ष—बगीचे की मृदा की जल धारण क्षमता सबसे अधिक, खेत की मृदा की जल धारण क्षमता नदी की मृदा से अधिक होती है।

2.5. उद्देश्य—विभिन्न प्रकार की मृदा में पाए जाने वाले पौधों का उससे सह सम्बन्ध।

रेतीली मृदा या रेतीली दोमट मृदा की जल धारण क्षमता कम होती है, इसमें पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण, यह कम उपजाऊ होती है। रेतीली मृदा में **शुष्कोद्भिद् पादप** उगते हैं, इनकी संख्या भी कम होती है।

चिकनी मृदा (Clay soil) की जल धारण क्षमता अधिक होती है। मृदा कणों के मध्य रिक्त स्थान बहुत छोटे होते हैं। अत: यह मृदा कठोर हो जाती है, इसमें वायु संचार बहुत कम होता है। इस मृदा में **समोद्भिद्** (mesophytes) पाए जाते हैं।

दोमट मृदा (loam) में वायु संचार तथा जल धारण क्षमता सामान्य होती है। यह मृदा कृषि के लिए उपयुक्त होती है। किसी स्थान पर पाए जाने वाले पौधों की आकारिकी उस स्थान की मृदा संरचना पर निर्भर करती है।

3. उद्देश्य—जलाशयों से पानी एकत्र करके पानी की शुद्धता एवं उसमें जीवित जीवों का अध्ययन करना।

सामग्री—जलाशयों से जल एवं जीवों का संग्रह करने के लिए पॉलीथीन की थैलियाँ, कीट पकड़ने वाला जाल आदि।

विधि—जलाशयों से जल के साथ जलीय जीवों (पादप एवं जन्तु) को छोटी-छोटी पॉलीथीन की थैलियों में एकत्र करके प्रयोगशाला में ले आते हैं।

प्रेक्षण—(i) जलाशय के जल की शुद्धता ज्ञात करने के लिए इनका BOD (Biological Oxygen Demand) तथा COD (Chemical Oxygen Demand) ज्ञात करते हैं। स्वच्छ पेय जल का BOD 1 ppm से कम होता है।

(ii) जलाशय के जल में **पादप प्लवक, जन्तु प्लवक**, जल निमग्न पादप एवं जन्तु पाए जाते हैं। पादप प्लवकों के अन्तर्गत **सूक्ष्मजीवी शैवाल** आते हैं। जलनिमग्न पादपों में *हाइड्रिला, पोटामोजीटोन, वेलिसनेरिया, सिरेटोफिल्लस* आदि आते हैं। **प्लावी पादपों** में ***लेम्ना, एजोला, पिस्टिया, वुल्फिया*** आदि आते हैं।

(iii) जन्तुप्लवक, कीडे-मकोड़े, मोलस्क्स, आर्थ्रोपोड्स, मेढक, मछली आदि उपभोक्ता होते हैं।

4. उद्देश्य—वायु में निलम्बित कणिक पदार्थों का अध्ययन करना।

विधि—दो व्यापक रूप से भिन्न स्थलों की वायु में निलम्बित कणिक पदार्थों का अध्ययन करने के लिए **औद्योगिक क्षेत्र** तथा जहाँ भवनों का निर्माण कार्य चल रहा हो, उन स्थानों का चयन करने, वायु में उपस्थित निलम्बित कणिक पदार्थों की उपस्थिति ज्ञात करते हैं।

प्रेक्षण—वायु में उपस्थित ठोस कणों को उनकी आमाप, स्रोत तथा भौतिक स्थिति के आधार पर 5 समूहों में वर्गीकृत कर लेते हैं—

1. धूल (Dust)—ये प्राकृतिक ठोस कण हैं जो वायु में मिल जाते हैं और धूल बनाते हैं। तेज आँधी में मृदाकण वायु में मिल जाते हैं। ईंधन के जलने से कार्बन कण वायु में मिल जाते हैं।

2. धुआँ (Smoke)—कार्बन, राख वायु में मिलकर धुआँ बनाते हैं। धुँए की मात्रा ईंधन की प्रकृति पर निर्भर करती है।

3. धूम (Fumes)—अनेक रासायनिक क्रियाओं में वाष्प के संघनन के फलस्वरूप ठोस धूम कण बन जाते हैं।

4. धुन्ध (Smog)—कोहरा और धुआँ मिलकर धुन्ध बनाते हैं। कोहरे में जल के महीन कण वायु में निलम्बित रहते हैं।

5. ऐरोसॉल (Aerosol)—जब वायु में कणिकीय प्रदूषक निलम्बित होते हैं, तो ऐरोसॉल बनाते हैं।

इन कणों की प्रकृति इनके स्रोत पर निर्भर करती है। रेशेदार तन्तुमय पदार्थ अपने स्रोत के समीप स्थित रहते हैं, जबकि महीन कण वायु में अधिक समय तक निलम्बित रहते हैं। ये कण वायु की विषाक्त गैसों को अवशोषित कर लेते हैं। वर्षा के समय निलम्बित कण नमी को अवशोषित करके भारी हो जाते हैं और नीचे बैठकर मृदा को प्रदूषित करते हैं।

5. उद्देश्य—क्वाड्रैट विधि द्वारा पादप समष्टि घनत्व का अध्ययन करना।

सामग्री—मजबूत सुतली, कील, हथौड़ा, मीटर टेप, कागज, पेन्सिल, हरबेरियम शीट आदि।

विधि—(i) किसी खेत या मैदान जिसमें विभिन्न प्रकार के पौधे हों, चयन करते हैं।

(ii) मीटर टेप, सुतली और कील की सहायता से 1 मीटर × 1 मीटर की वर्ग जालिका बनाते हैं।

(iii) प्रत्येक वर्ग इकाई में जाति विशेष (A, B, C, D आदि) के पौधों की संख्या ज्ञात करते हैं।

(iv) अध्ययन किए गए पौधों के नमूनों को हरबेरियम शीट पर सेलोटेप की सहायता से लगाकर सुरक्षित रख लेते हैं।

प्रेक्षण—अध्ययन किए गए पौधों की संख्या को तालिका में अंकित करते हैं—

पौधे की प्रजाति का नाम	प्रति वर्ग इकाई में पौधों की संख्या					एकाकियों की कुल संख्या	पादप जनसंख्या घनत्व या सघनता
	1	2	3	4	5		
A	—	—	—	—	—	—	—
B	—	—	—	—	—	—	—
C	—	—	—	—	—	—	—
D	—	—	—	—	—	—	—

निष्कर्ष—किसी जाति की जनसंख्या घनत्व किसी क्षेत्र में अध्ययन किए गए पौधों की कुल संख्या का औसत होता है।

$$\text{समष्टि घनत्व} = \frac{\text{वर्गों में किसी जाति के पौधों की कुल संख्या}}{\text{वर्गों की संख्या}}$$

6. उद्देश्य—क्वाड्रैट विधि द्वारा पादप समष्टि आवृत्ति का अध्ययन करना।

सामग्री—पतली डोरी, कील, मीटर पैमाना, हथौड़ा, कागज, पेन्सिल, हरबेरियम शीट, सेलोटेप।

विधि—पतली डोरी और कीलों की सहायता से क्षेत्र विशेष में 1×1 मीटर क्षेत्र पर वर्ग जालिका बनाते हैं। सुविधानुसार इसे पुन: 10 सेमी के वर्गों में विभाजित कर लेते हैं।

पादप प्रजातियों का वितरण उसके स्थानीय वातावरण के प्रति अनुकूलनता को प्रदर्शित करता है। समुदाय में किसी भी प्रजाति के सदस्य समान रूप से वितरित नहीं होते।

प्रेक्षण—आवृत्ति (frequency) का तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में एक प्रजाति विशेष के सदस्यों की बारम्बारता को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।

रॉन्कियर ने आवृत्ति के आधार पर पादप प्रजातियों को निम्नलिखित 5 आवृत्ति वर्गों में बाँटा है—

वर्ग	आवृत्ति रेंज	उपस्थिति
1.	1-20%	दुर्लभ
2.	21-40%	यदा-कदा उपस्थित
3.	41-60%	अक्सर उपस्थित
4.	61-80%	अधिकतर उपस्थित
5.	81-100%	सदैव उपस्थित

$$\text{प्रतिशत आवृत्ति} = \frac{\text{वर्ग जालिकाओं की संख्या जिसमें प्रजाति विशेष के सदस्य}}{\text{नमूने के लिए प्रयुक्त वर्ग जालिकाओं की कुल संख्या}} \times 100$$

7. उद्देश्य—प्याज के मूलाग्र की अस्थायी स्लाइड बनाना, समसूत्री विभाजन का अध्ययन करना।

सामग्री—प्याज की स्थिर की हुई मूलाग्र, ऐसीटोकारमीन, स्पिरिट लैम्प, स्लाइड, कवर स्लिप आदि।

विधि—मूलाग्र का लगभग 5 मिमी लम्बा टुकड़ा लेकर ऐसीटोकारमीन से अभिरंजित करके, टुकड़े को स्लाइड पर रखकर कवर स्लिप से एक ढक देते हैं। स्लाइड को 3-4 मिनट तक स्पिरिट लैम्प पर गर्म करके, कवर स्लिप को अँगुली से दबा देते हैं। कोशिकाओं का सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन कीजिए।

प्रेक्षण—कोशिकाओं में कोशा विभाजन की विभिन्न अवस्थाएँ—पूर्वावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था तथा अन्त्यावस्था दिखायी देती हैं।

7.1. उद्देश्य—कोशिका विभाजन की मध्यावस्था का अध्ययन।

(i) यह समसूत्री विभाजन की मध्यावस्था (metaphase) है।

(ii) केन्द्रक कला, केन्द्रक (nucleolus) विलुप्त हो गए हैं। कोशा के मध्य तन्तुओं से तर्कु (spindle) बन जाता है। तर्कु में ट्रेक्टाइल तन्तु तथा सहारा प्रदान करने वाले (supporting) तन्तु पाए जाते हैं।

(iii) गुणसूत्र तर्कु की मध्यरेखा (equator) पर व्यवस्थित हो जाते हैं।

(iv) ट्रेक्टाइल तन्तु गुणसूत्र बिन्दु (centromere) से जुड़ जाते हैं।

(v) सहारा प्रदान करने वाले कोशिका के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक फैले रहते हैं।

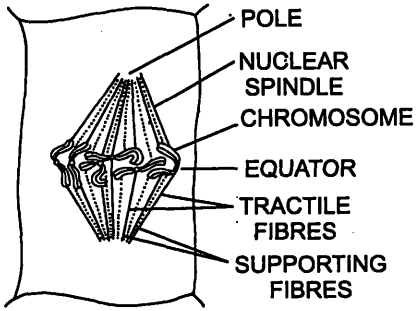

चित्र—समसूत्री कोशा विभाजन (Mitosis) : मध्यावस्था (Metaphase stage)

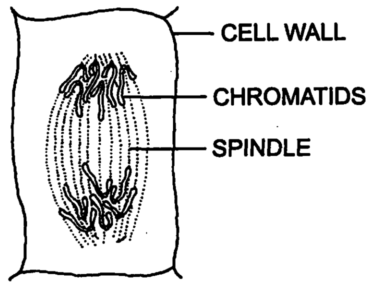

चित्र—समसूत्री कोशा विभाजन (Mitosis) : पश्चावस्था (Anaphase stage)

7.2. उद्देश्य—कोशिका विभाजन की पश्चावस्था का अध्ययन।

(i) यह समसूत्री विभाजन की पश्चावस्था की स्लाइड है।

(ii) इसमें गुणसूत्र बिन्दु (centromere) दो भागों में बँट जाता है। ट्रेक्टाइल तन्तुओं में संकुचन के कारण अर्द्धगुणसूत्र (chromatids) विपरीत ध्रुवों की ओर खिंचने लगते हैं।

(iii) अर्द्धगुणसूत्र सेन्ट्रोमीयर सहित विपरीत ध्रुवों पर पहुँच जाते हैं।

8. उद्देश्य—स्टार्च पर लार एमाइलेज की सक्रियता पर विभिन्न तापमानों और pH मान के प्रभाव का अध्ययन।

सामग्री—स्टार्च का घोल, आयोडीन का घोल, फेहलिंग घोल, बेनेडिक्ट घोल, मुख की लार, परखनलियाँ, स्पिरिट लैम्प आदि।

विधि—एक ग्राम अरारोट का पेस्ट बनाकर उसमें 100 cc जल मिलाकर, उबालकर ठण्डाकर लेते हैं। यह 1% स्टार्च का घोल है। 5-5 cc स्टार्च घोल चार अलग-अलग परखनलियों में लेते हैं। A परखनली में 5 cc असुत जल तथा शेष B, C तथा D में 5-5 cc लार मिलाते हैं।

D परखनली के मिश्रण को 5 मिनट तक 100°C ताप पर उबालते हैं।

प्रत्येक परखनली के घोल को तीन-तीन भागों में बाँट लेते हैं। जैसे—A_1, A_2, A_3, B_1, B_2, B_3 आदि।

A_1, B_1, C_1 तथा D_1 परखनली में आयोडीन घोल मिलाकर निरीक्षण करने पर A_1 तथा D_1 परखनली का नीला रंग स्टार्च की उपस्थिति को प्रदर्शित करती है। B_1 तथा C_1 परखनली में स्टार्च लार में उपस्थित एमाइलेज (टायलिन) के कारण माल्टोस में बदल जाने के कारण नीला रंग नहीं आता। D_1 परखनली में उच्च ताप के कारण एन्जाइम नष्ट हो जाने के कारण स्टार्च माल्टोस में नहीं बदलता।

विभिन्न तापमान और अलग-अलग pH मान के प्रभाव का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सामान्य तापमान तथा pH 6.8 पर लार एमाइलेज स्टार्च पर प्रतिक्रिया करता है। अम्लीय तथा क्षारीय pH मान पर एन्जाइम कार्य नहीं करता; अति निम्न ताप पर एन्जाइम निष्क्रिय रहता है और उच्च ताप पर एन्जाइम नष्ट हो जाता है।

(खण्ड-ख)

1. विभिन्न कारकों के द्वारा परागण के लिए पुष्पों में पाए जाने वाले अनुकूलनों का अध्ययन करना।

1.1. उद्देश्य—वायु परागित पुष्पों में परागण हेतु अनुकूलनों का अध्ययन करना।

सामग्री—ग्रैमिनी कुल (मक्का आदि) के नर तथा मादा पुष्पक्रम।

विधि—हैण्डलेन्स की सहायता से पुष्पों का निरीक्षण करना।

प्रेक्षण—(i) मक्का के उभयलिंगी (monoecious) पौधे पर नर तथा मादा पुष्प पृथक्-पृथक् लगे होते हैं।

(ii) नर पुष्प छोटे, रंगहीन, मकरन्दहीन तथा गन्धहीन होते हैं। इनमें असंख्य परागकण बनते हैं।

(iii) मादा पुष्पक्रम स्थूलमंजरी (Spadix) होता है। यह हरे पृथुपर्णों (Spathe) से ढका रहता है। मादा पुष्पों से रेशमी लम्बी धागे सदृश वर्तिकाएँ पुष्पक्रम से बाहर निकली रहती हैं।

(iv) परागकण छोटे, शुष्क, हल्के, जलरोधी होते हैं। ये वायु द्वारा परागित होते हैं।

(v) परागकण रोमल वर्तिकाग्रों (Stigma) में उलझ जाते हैं और इस प्रकार परागण सम्पन्न होता है।

1.2. उद्देश्य—कीट परागित पुष्पों में परागण हेतु अनुकूलनों का अध्ययन करना।

सामग्री—विभिन्न कीट परागित पुष्प, हैण्डलेन्स या विच्छेदन सूक्ष्मदर्शी, स्लाइड आदि।

विधि—विभिन्न पुष्पीय भागों को स्लाइड पर व्यवस्थित करके हैण्डलेन्स या विच्छेदन सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण करना।

प्रेक्षण—(i) कीट परागित पुष्प बड़े आकार के रंगीन आकर्षक होते हैं। जब पुष्प छोटे होते हैं तो ये समूह में लगे रहते हैं जिससे ये कीटों को आकर्षित कर सकें।

(ii) अनेक कीट परागित पुष्पों में विशेष सुगन्ध या गन्ध होती है। रात्रि में खिलने वाले पुष्प प्राय: सुगन्धित होते हैं जिससे कीट इनकी सुगन्ध के कारण आकर्षित होकर परागण कर सकें।

(iii) अनेक पुष्पों से मकरन्द स्रावित होता है। कीट भोजन के रूप में मकरन्द को प्राप्त करने के लिए पुष्पों पर आते हैं और परागण कर देते हैं।

(iv) परागकण चिपचिपे या कंटकमय होते हैं जिससे ये कीटों के शरीर से सुगमता से चिपक जाते हैं और एक पुष्प से दूसरे पुष्प तक पहुँच जाते हैं।

(v) कीट परागित पुष्पों की वर्तिकाग्र चिपचिपी और खुरदरी होती है इससे परागकण सुगमता से चिपक जाते हैं।

2. उद्देश्य—स्थायी स्लाइड की सहायता से वर्तिकाग्र पर पराग अंकुरण का अध्ययन करना।

सामग्री—परागण के पश्चात् जायांग की लम्बी काट की स्थायी स्लाइड, संयुक्त सूक्ष्मदर्शी आदि।

विधि—पुष्प के जायांग की लम्ब काट की स्थायी स्लाइड का सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन करते हैं।

प्रेक्षण—(i) जायांग के विभिन्न भाग वर्तिकाग्र, वर्तिका तथा अण्डाशय दिखायी देते हैं। वर्तिकाग्र पर अनेक परागकण अंकुरित होते दिखायी देते हैं। कुछ पराग नलिकाएँ वर्तिका से होती हुई बीजाण्ड की ओर बढ़ती दिखायी देती हैं।

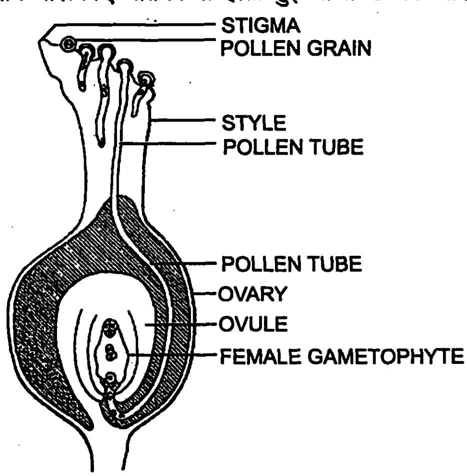

चित्र-जायांग की लम्ब काट में पराग अंकुरण।

(ii) एक पराग नलिका बीजाण्ड में प्रवेश करती दिखायी देती है।

(iii) परागनलिका द्वारा नर युग्मक बीजाण्ड के भ्रूणकोष (embryo sac) में पहुँचकर संयुग्मन तथा त्रिसंलयन द्वारा क्रमश: युग्मनज (zysole) तथा **प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक** बनाती है।

3. स्थायी स्लाइड्स द्वारा वृषण और अण्डाशय की अनुप्रस्थ काट का अध्ययन।

3.1. उद्देश्य—स्तनी के वृषण की अनुप्रस्थ काट का अध्ययन।

टिप्पणी (Comments)—(1) वृषण तन्तुमय आवरण **ट्यूनिका एल्ब्यूजिनिया** से घिरा होता है। वृषण के संयोजी ऊतक में **शुक्रजन नलिकाएँ** स्थित होती हैं।

(2) संयोजी ऊतक में रुधिर केशिकाएँ, तन्त्रिका तन्तु तथा **अन्तराली कोशिकाओं** या लेडिग कोशिकाओं के समूह पाए जाते हैं।

(3) शुक्रजन नलिकाओं की **जनन एपिथीलियम** चारों ओर से **ट्यूनिका प्रोप्रिया** से घिरी होती है।

(4) जनन एपिथीलियम में **शुक्रजनक कोशिकाएँ, अवलम्बक कोशिकाएँ** या **सरटोली कोशिकाएँ** पायी जाती हैं। सरटोली कोशिकाएँ शुक्राणुओं का पोषण करती हैं।

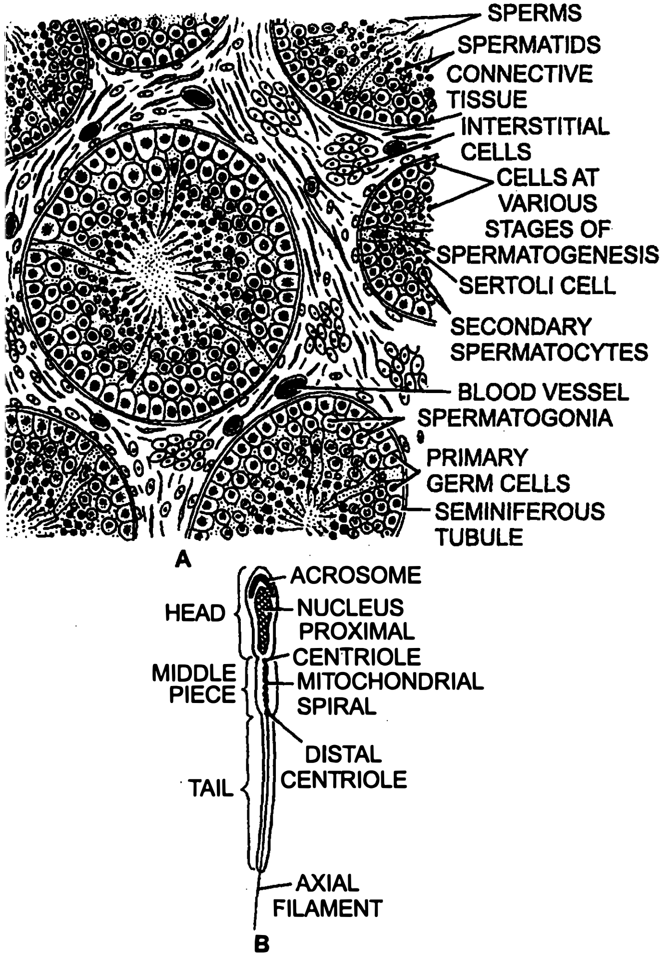

चित्र—(A) स्तनी के वृषण की अनुप्रस्थ काट एवं (B) शुक्राणु।

(5) शुक्रजनक कोशिकाओं से शुक्रजनन द्वारा शुक्राणुओं का निर्माण होता है।

(6) अन्तराली या लेडिग कोशिकाएँ नर हॉर्मोन्स स्रावित करती हैं जो द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(7) शुक्राणु के तीन भाग होते हैं—शीर्ष, मध्य भाग तथा पूँछ।

3.1. उद्देश्य—स्तनी के अण्डाशय की अनुप्रस्थ काट का अध्ययन।

टिप्पणी (Comments)—(1) स्तनी का अण्डाशय ठोस तन्तुमय संयोजी ऊतक **'स्ट्रोमा'** से बना होता है। स्ट्रोमा में रुधिर केशिकाएँ, लसीका केशिकाएँ, तन्त्रिका तन्तु, श्वेत एवं पीत तन्तु तथा विभिन्न आकार की **ग्रैफियन पुटिकाएँ** (Graffian follicles) पायी जाती हैं।

(2) स्ट्रोमा की बाह्य सतह जनन एपिथीलियम तथा पेरिटोनियम से बनी होती है।

(3) जनन एपिथीलियम की कोशिकाओं में कोशा विभाजन के फलस्वरूप **प्राथमिक पुटिका** बनती है जो अन्ततः **ग्रैफियन पुटिका** का निर्माण करती है।

(4) ग्रैफियन पुटिका में अण्ड कोशिका के चारों ओर **जोना पेल्यूसिडा** तथा **कॉरोना रेडिएटा** का स्तर होता है। ग्रैफियन पुटिका में एक अपूर्ण पुटिका गुहा होती है। ग्रैफियन पुटिका के बाह्य स्तर की कोशिकाएँ तथा भीतरी स्तर की कोशिकाएँ **डिस्कस प्रोलीजेरस** द्वारा जुड़ी रहती हैं।

(5) परिपक्व ग्रैफियन पुटिका फटकर अण्ड को मुक्त कर देती है। अण्ड का निषेचन होने पर ग्रैफियन पुटिका की शेष कोशिकाएँ **कॉर्पस ल्यूटियम** बनाती हैं। अण्ड का निषेचन न होने की स्थिति में **कॉर्पस ऐल्बिकेन्स** के रूप में शेष रह जाती हैं।

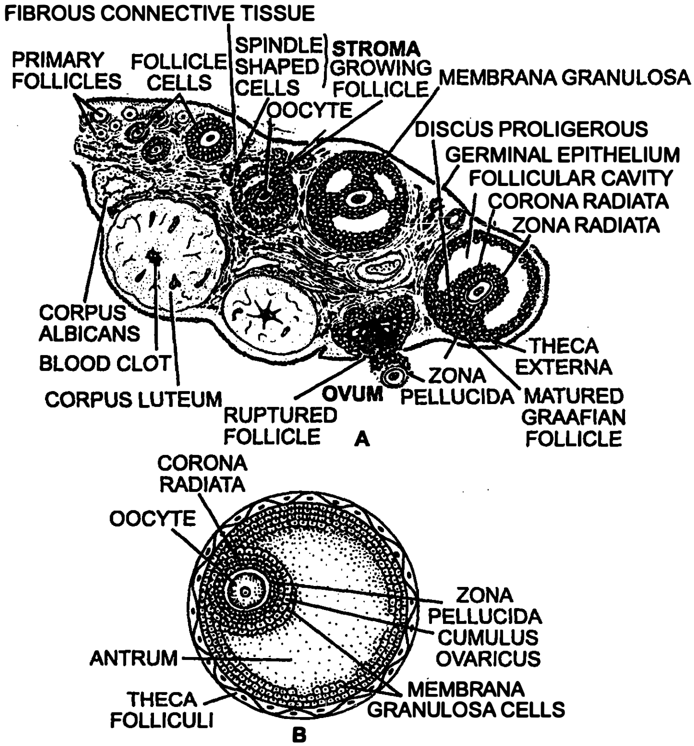

चित्र–(A) स्तनी के अण्डाशय की अनुप्रस्थ काट, (B) ग्रैफियन पुटिका।

4. स्थायी स्लाइड द्वारा प्याज की पुष्प कलिका अथवा टिड्डे के वृषण में अर्द्धसूत्री विभाजन का अध्ययन करना।

4.1. उद्देश्य—स्थायी स्लाइड्स की सहायता से अर्द्धसूत्री विभाजन की प्रथम पूर्वावस्था की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करना।

विधि—स्लाइड की स्थायी स्लाइड को सूक्ष्मदर्शी में उच्च आवर्धन (high power) में फोकस करके अध्ययन करते हैं।

प्रेक्षण—प्रथम पूर्वावस्था (First Prophase) की विभिन्न उपअवस्थाएँ।

अर्द्धसूत्री प्रथम की पूर्वावस्था प्रथम बहुत लम्बी एवं जटिल होती है। इसे 5 उपअवस्थाओं में बाँटते हैं—**लेप्टोटीन** (leptotene), **जाइगोटीन** (zygotene), **पैकीटीन** (pachytene), **डिप्लोटीन** (diplotene) तथा **डायकाइनेसिस** (diakinesis)।

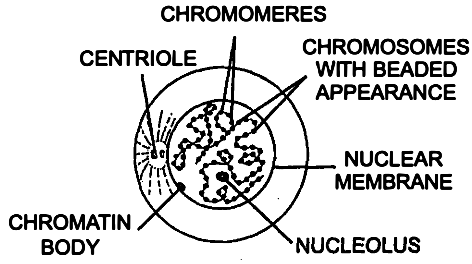

EPTOTENE

1. लेप्टोटीन (Leptotene)—(i) केन्द्रक के आयतन में वृद्धि होती है। यह अविभाजित कोशिकाओं की अपेक्षा बड़ा होता है।

(ii) **क्रोमैटिन जालिका** संघनित होकर धागे सदृश **गुणसूत्र** (chromosome) का निर्माण करती है।

(iii) **सेन्ट्रोसोम** (centrosome) दो भागों में बँट जाता है।

(iv) गुणसूत्रों पर माला के मोतियों के समान दानेदार क्रोमोमीयर्स (chromomeres) दिखायी देते हैं।

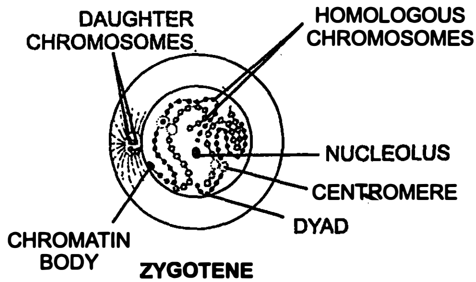

ZYGOTENE

2. जाइगोटीन (Zygotene)—(i) गुणसूत्र अधिक संघनित होकर छोटे और स्पष्ट हो जाते हैं।

(ii) **समजात गुणसूत्र** (homologous chromosomes) जोड़े बना लेते हैं। इन्हें **द्विसंयोजी** (bivalent) कहते हैं। इस क्रिया को **सूत्रयुग्म** (synapsis) कहते हैं।

(iii) न्यूक्लिओलस (nucleolus) स्पष्ट होता है।

(iv) केन्द्रकावरण (nuclear membrane) पूर्ण होता है।

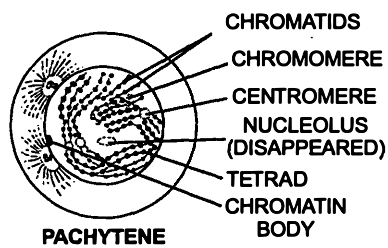

PACHYTENE

3. पैकीटीन (Pachytene)—(i) प्रत्येक गुणसूत्र लम्बाई में दो **अर्द्धगुणसूत्रों** (chromatids) में बँट जाता है। अत: प्रत्येक गुणसूत्र जोड़े में **चार अर्द्धगुणसूत्र** (chromatids) दिखायी देते हैं। इस स्थिति को **चतुर्संयोजी** (tetravalent) कहते हैं।

(ii) प्रत्येक युग्म के गुणसूत्र एक-दूसरे से लिपटे रहते हैं। **समजात गुणसूत्रों** के अर्द्धगुणसूत्र परस्पर कुछ बिन्दुओं पर चिपक जाते हैं।

(iii) न्यूक्लिओलस स्पष्ट होता है।

(iv) केन्द्रकावरण (nuclear membrane) पूर्ण होता है।

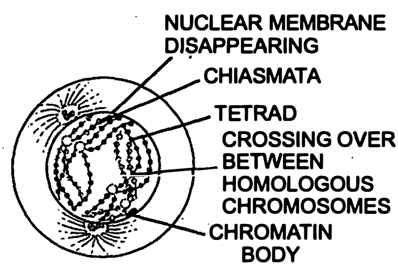

DIPLOTENE

4. डिप्लोटीन (Diplotene)—(i) समजात गुणसूत्र जोड़े (bivalent) के गुणसूत्र पृथक् होने लगते हैं। जिन बिन्दुओं पर समजात गुणसूत्रों के अर्द्धगुणसूत्र (chromatids) परस्पर चिपके होते हैं, **किएज्मेटा** (chiasmata) कहलाते हैं।

(ii) किएज्मेटा पर अर्द्धगुणसूत्रों के टुकड़ों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। इस क्रिया को **विनिमय** (crossing over) कहते हैं।

(iii) विनिमय के कारण गुणसूत्रों की संरचना बदल जाती है।

(iv) केन्द्रकावरण (nuclear membrane) तथा न्यूक्लिओलस (nucleolus) विलुप्त होने लगते हैं।

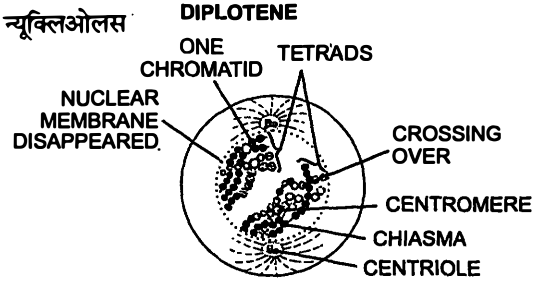

DIAKINESIS

5. डाइकाइनेसिस (Diakinesis)—(i) केन्द्रकावरण (nuclear membrane) तथा न्यूक्लिओलस विलुप्त हो जाते हैं।

(ii) तर्कु तन्तुओं का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। इससे न्यूक्लिअर स्पिंडल बनता है।

(iii) समजात गुणसूत्रों के जोड़े के दोनों गुणसूत्र लगभग पृथक् हो जाते हैं। ये केवल शीर्ष किएज्मेटा द्वारा सम्बन्धित रहते हैं।

5. उद्देश्य—स्तनी के ब्लास्टुला की अनुप्रस्थ काट का अध्ययन।

टिप्पणी (Comments)—(1) यह कोशिकाओं से बनी एक गेंद सदृश संरचना है। इसके बाह्य आवरण की कोशिकाएँ **ट्रोफोब्लास्ट** कहलाती हैं। ये पोषक तरल को अवशोषित करती हैं।

(2) ब्लास्टुला की तरलयुक्त गुहा को **ब्लास्टोसील** (Blastocoel) कहते हैं।

(3) ब्लास्टुला में भीतरी कोशिकाओं का समूह एक **भ्रूणीय घुण्डी** (embryonal knob) बनाता है। यह एक ओर ट्रोफोब्लास्ट कोशिकाओं से जुड़ा रहता है।

(4) भ्रूणीय घुण्डीवाला सिरा **भ्रूणीय ध्रुव** (embryonal pole) तथा विपरीत सिरा **वर्धी ध्रुव** (vegetal pole) कहलाता है।

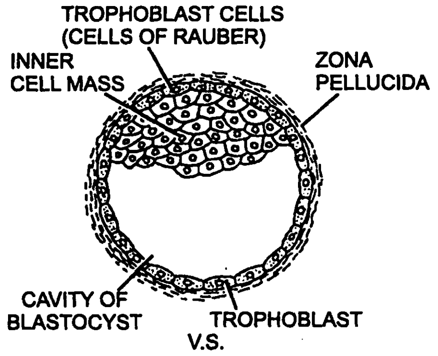

चित्र—ब्लास्टुला की अनुलम्ब काट।

6. उद्देश्य—मेण्डेलीय वंशागति के लिए बीज प्रतिदर्श के विश्लेषण का अध्ययन करना।

सामग्री—मटर के बीज, पेट्रीडिश, नोटबुक, पेन्सिल आदि।

विधि—लगभग 500 ग्राम मटर के बीज लेने के पश्चात् इनको आकार, आकृति एवं रंगों के आधार पर अलग-अलग छाँटकर पेट्रीडिश में रखते हैं।

प्रेक्षण—विभिन्न प्रकार के बीजों की संख्या ज्ञात करके निम्न तालिका के अनुसार वर्गीकृत करते हैं—

क्र० सं०	लक्षण	बीजों की संख्या	तुलनात्मक लक्षण	अनुपात
1.	बीज का आकार	722	गोलबीज (549), झुर्रीदार बीज (183)	3 : 1
2.	बीज का आकार एवं रंग	722	पीले गोल (412), पीले झुर्रीदार (137), हरे गोल (137), हरे झुर्रीदार (46)	9 : 3 : 3 : 1

परिणाम—एक संकर संकरण में प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षण का अनुपात 3 : 1 होता है। **द्विसंकर संकरण** में बीजों के आकार एवं रंग के आधार पर अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 का होता है।

निष्कर्ष (i)—प्रभाविता के नियमानुसार प्रभावी लक्षण (जीन) अप्रभावी लक्षण (जीन) को प्रदर्शित नहीं होने देता।

(ii) तुलनात्मक लक्षण युग्मक निर्माण के समय पृथक् हो जाते हैं अर्थात् लक्षण विशेष के लिए युग्मक शुद्ध होते हैं, इसे **पृथक्करण का नियम** या **युग्मकों की शुद्धता का नियम** कहते हैं।

7. वंशावली चार्ट की सहायता से आनुवंशिक विशेषताओं का अध्ययन।

7.1. उद्देश्य—वंशावली चार्ट की सहायता से जीभ का मुड़ना या उर्मिल जिह्वा (Rolling of tongue) की वंशागति का अध्ययन करना।

यह एक अप्रभावी जीन 'a' के कारण होता है। लक्षण तभी प्रकट होता है जब **समजात अप्रभावी** जीन एक साथ आते हैं। **विषमयुग्मजी** (heterozygous) स्थिति होने पर सन्तान इस लक्षण की वाहक होती है अर्थात् लक्षण बाह्य रूप से प्रदर्शित नहीं होता।

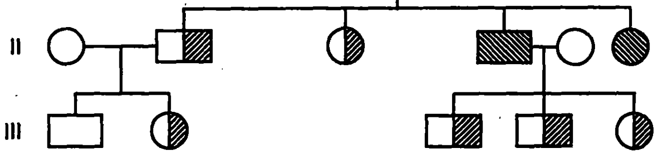

चित्र—जीभ का मुड़ना लक्षण की वंशागति।

1. लक्षण के लिए वाहक स्त्री (Aa) और लक्षण प्रभावित पुरुष (aa) की सन्तानों में वाहक पुत्र (Aa), पुत्री (Aa) एवं लक्षण प्रभावित पुत्र (aa) और पुत्रियाँ (aa) हुईं।

2. वाहक पुरुष (Aa) और सामान्य स्त्री (AA) की सन्तति में सामान्य पुत्र (AA) और वाहक पुत्री (Aa) हुई। लक्षण प्रभावित पुरुष (aa) और सामान्य स्त्री (AA) की सन्तति में वाहक पुत्री (Aa) और वाहक पुत्र (Aa) हुए।

7.2. उद्देश्य—वंशावली चार्ट की सहायता से रुधिर वर्ग की वंशागति का अध्ययन करना।

मनुष्यों में रुधिर वर्गों की वंशागति **बहुविकल्पता** (multiple allelism) का उदाहरण है। यह तीन युग्मविकल्पी जीन I^a I^b तथा I^o के कारण होती है। ये तीनों जीन समजात गुणसूत्रों पर एक ही स्थान (locus) पर उपस्थित होते हैं। अत: एक मनुष्य में इन तीन जीन्स में से केवल दो जीन्स होते हैं। ये समान या असमान हो सकते हैं। I^a तथा I^b क्रमश: I^o पर प्रभावी होते हैं, जबकि I^a और I^b में **प्रभाविता का अभाव** होता है। I^a की उपस्थिति में **प्रतिजन-A** तथा I^b की उपस्थिति में **प्रतिजन-B** बनता है, जबकि I^o की उपस्थिति में कोई प्रतिजन नहीं बनता।

विषमयुग्मी A तथा B रुधिर वर्ग वाले स्त्री-पुरुषों की सन्तानों का A, B, AB या O रुधिर वर्ग हो सकता है—

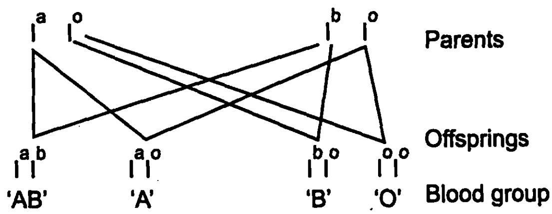

चित्र—विषमयुग्मी 'A' तथा 'B'।

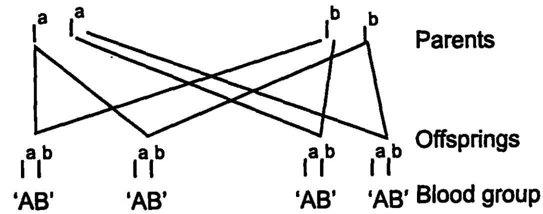

चित्र—समयुग्मी 'A' तथा 'B' रुधिर वर्ग की वंशागति।

स्पष्टीकरण (Explanation)

1. विषमयुग्मी A तथा B रुधिर वर्ग वाले स्त्री-पुरुष की जीन संरचना I^a I^o तथा I^b I^o होने के कारण युग्मक बनते समय तुलनात्मक लक्षण के जीन पृथक् होकर स्वतन्त्र रूप से सन्तानों में पहुँचते हैं और नये संयोग बनने के कारण 'AB' रुधिर वर्ग (I^a I^b), 'A' रुधिरवर्ग (I^a I^o), 'B' रुधिरवर्ग (I^b I^o) या 'O' रुधिरवर्ग (I^o I^o) वाली सन्तति हो सकती है।

2. समयुग्मी A तथा B रुधिर वर्ग वाले स्त्री पुरुष की जीन संरचना (I^a I^a) तथा I^b I^b होने के कारण युग्मक बनते समय जोड़े के जीन्स स्वतन्त्र रूप से सन्तानों में पहुँचते हैं। I^a तथा I^b जीन में प्रभाविता का अभाव होने के कारण रुधिर वर्ग AB (I^a I^b) वाली सन्तति उत्पन्न हो सकती है।

7.3. उद्देश्य—वंशावली चार्ट की सहायता से आनुवंशिक लक्षण विडो पीक (Widow's peak) की वंशागति का अध्ययन करना।

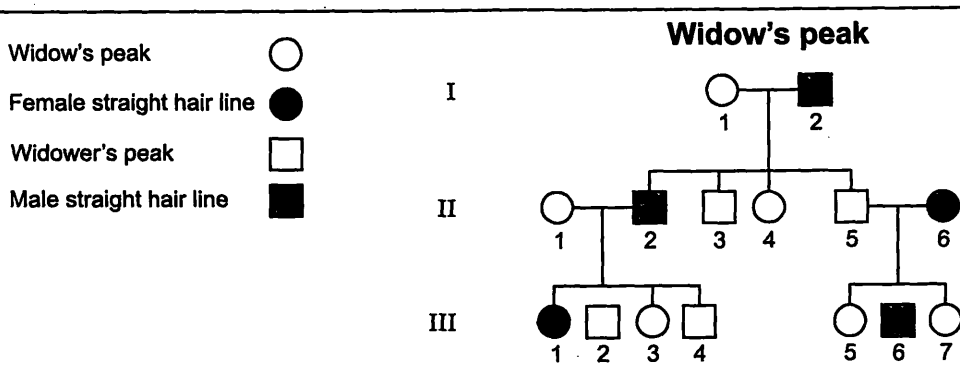

चित्र—ऑटोसोमल प्रभावी (autosomal dominant) लक्षण (विडो पीक) की वंशागति का चार्ट।

स्पष्टीकरण (Explanation)

विडो पीक एक **ऑटोसोमल प्रभावी** (autosomal dominant) लक्षण है। इसमें सिर के बाल माथे पर नाक की सीध में कुछ बाहर की ओर निकले होते हैं। इसके अप्रभावी लक्षण में बाल माथे पर एक सीधी लाइन बनाते हैं।

प्रेक्षण (Observation)

1. विडो पीक लक्षण वाले चिह्न (□ or ○) खाली हैं, जबकि सीधी पंक्ति वाले बालों के लक्षण को काले चिह्न (■ or ●) से प्रदर्शित किया गया है। युगल में विडो पीक स्त्री का जीनोटाइप 'Ww' तथा सीधे बाल वाले पुरुष का जीनोटाइप 'ww' है।

2. उक्त युगल (Ww, ww) की सन्तानों में तीन पुत्र व एक पुत्री में एक पुत्र सामान्य सीधे बाल (ww) वाला तथा शेष तीन सन्तानों में **विडो पीक** (Ww) लक्षण प्रकट होता है।

3. सामान्य या सीधी लाइन में बाल वाले पुत्र (ww) और विडो पीक लक्षण वाली स्त्री (Ww) की सन्तानें में प्रथम पुत्री सीधे या सामान्य बालों वाली तथा शेष सन्तानों विडो पीक लक्षण वाली उत्पन्न हुई। विडो पीक लक्षण वाले पुत्र (Ww) का विवाह सामान्य या सीधे बाल वाली स्त्री (ww) से हुआ। इसकी प्रथम तथा तृतीय सन्तान पुत्री (Ww), विडो पीक लक्षण वाली और पुत्र (ww) सामान्य या सीधे बाल वाला था।

8. उद्देश्य—नियन्त्रित परागण; बंध्यीकरण (विपुंसन), बैगिंग तथा टैगिंग का अध्ययन।

सामग्री (Material)—सोलेनेसी या मटर कुल के पुष्प युक्त पौधे, चिमटी, सेलोफेन थैलियाँ, हैण्ड लेन्स, लेबल, ब्रुश, कैंची, नोटबुक आदि।

विधि (Method)—1. स्वनिषेचन के फलस्वरूप **शुद्ध समयुग्मजी लक्षण** वाले पौधे प्राप्त कर लीजिए। संकरण हेतु **लक्षणों का निर्धारण** कर लेना चाहिए।

2. पौधे की ऐसी पुष्प कलिकाओं का चयन कर लीजिए जो 2-3 दिन में खिलने वाली हों।

3. स्वनिषेचन न हो सके, इसके लिए पुष्प कलिका के दलों को खोलकर चिमटी की सहायता से समस्त **पुंकेसरों** (stamens) को पुंतन्तु सहित हटा दीजिए। इस क्रिया को **विपुंसन** (emasculation) कहते हैं।

4. बाह्यदल, दल तथा जायांग को सामान्य अवस्था में ही रहने दीजिए।

5. विपुंसन के पश्चात् पुष्प को अवांछित परागकणों द्वारा परागण से बचाने के लिए सेलोफेन की थैलियों से ढक दीजिए। कागज या पॉलिथीन की थैलियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। नर पुष्पों को भी थैलियों से ढक देते हैं जिससे परागकण दूषित न हो सकें अर्थात् अन्य पौधों के परागकणों के साथ न मिल सकें, इस प्रक्रिया को **थैली बाँधना** (bagging) कहते हैं।

6. विपुंसित पुष्पों (emasculated flowers) के वर्तिकाग्र पर वांछित परागकणों को छिड़कने के पश्चात् पुष्प को पुन: थैली से ढक दीजिए।

7. पौधे पर विपुंसन तथा कृत्रिम परागकण की तिथि तथा जनक पौधे की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन युक्त लेबल लगा दीजिए। इस प्रक्रिया को **नामांकन** (tagging) कहते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)—कृत्रिम संकरण से प्राप्त पौधों के बीजों को अलग सुरक्षित रखा जाता है। आगामी ऋतु में इन संकर बीजों (hybrid seeds) से **संकर ओज** (hybrid vigour) के साथ पौधे तैयार किए जाते हैं। ये पौधे **उन्नत किस्म** के तथा **विशिष्ट लक्षणों** से युक्त होते हैं; जैसे—उत्पादकता; रोगप्रतिरोधक क्षमता, अधिक वृद्धि, पाले व सूखे आदि का सामना करने में सक्षम होते हैं।

9. रोग कारक जन्तुओं के प्रतिरूपों तथा स्लाइड्स का अध्ययन।

9.1. उद्देश्य—*ऐस्कैरिस* को पहचानना और उनसे होने वाले रोग के लक्षणों पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह एकपोषदीय अन्त:परजीवी है। इसका शरीर पतला, लम्बा, बेलनाकार, तर्कुरूपी होता है। नर और मादा अलग-अलग होते हैं।

(ii) शरीर पर झुर्रीदार रक्षात्मक अल्पपारदर्शी **उपचर्म** होता है।

(iii) शरीर पर चार अनुलम्ब धारियाँ होती हैं।

(iv) नर में क्लोएका से एक जोड़ी **पीनियल शूक** (pineal setae) निकली होती हैं। इसका पश्च छोर मुड़ा हुआ होता है।

(v) मादा का पश्च छोर (tail) सीधा होता है। इसमें नर जनन छिद्र तथा गुदा पृथक् होते हैं।

रोग के लक्षण—(i) परजीवी से उत्पन्न विषाक्त पदार्थ आँत की म्यूकोसा को प्रभावित करके भोजन के पाचन को बाधित करता है।

(ii) *ऐस्कैरिस* के कारण कमजोरी वमन, थकान, उदरपेशीय पीड़ा, अनिद्रा, अरक्तता उण्डुक पुच्छ शोथ आदि लक्षण प्रदर्शित होते हैं।

(iii) *ऐस्कैरिस* के लार्वा कभी-कभी पथभ्रष्ट होकर शरीर के अन्य भागों में पहुँचकर उन्हें क्षति पहुँचाते हैं।

(iv) *ऐस्कैरिस* का संक्रमण भ्रूणयुक्त अण्डों से होता है।

उपचार—डिकैरिस (decaris), एल्कोपार (alcopar), हेल्मैसिड (helmacid with senna) आदि औषधियों का उपयोग किया जाता है।

9.2. उद्देश्य—*एण्टअमीबा* प्रोटोजोआ को पहचानना तथा इससे होने वाले रोग पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह **एकपोषदीय** अन्त:परजीवी, मनुष्य की आँत में पाए जाने वाला प्रोटोजोआ है। इसकी तीन प्रावस्थाएँ होती हैं—(a) वयस्क अवस्था को ट्रोफोज्वॉइट (trophozoite) (b) प्रीसिस्टिक (precystic) तथा (c) सिस्टिक (cystic) प्रावस्था।

(ii) ट्रोफोज्वॉइट लगभग 20-30 μ व्यास की होती हैं। इससे स्रावित एन्जाइम्स के कारण आँत में अल्सर (ulcer) बन जाते हैं। इसमें द्विगुणन द्वारा संख्या वृद्धि होती है।

(iii) संक्रामक अवस्था **'सिस्टिक प्रावस्था'** होती है। यह मल के साथ रोगी के शरीर से बाहर आकर अन्य व्यक्तियों में संक्रमण करते हैं।

(iv) संक्रमण दूषित जल, भोज्य पदार्थ तथा वायु के कारण होता है। मक्खी इस रोग के संक्रमण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

रोग के लक्षण—(i) अल्सर के फटने से श्लेष्म तथा रक्त स्राव होता है। इस कारण इस रोग को **खूनी पेचिस** भी कहते हैं।

(ii) उदर पीड़ा, थकान, वमन, बुखार आदि इस रोग के प्राथमिक लक्षण हैं।

रोकथाम एवं उपचार—(i) व्यक्तिगत स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिए। भोजन से पूर्व हाथ साबुन से धोने चाहिए। सामाजिक स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

(ii) उपचार हेतु ऐमेटिन, मेट्रोनिडाजोल, फ्यूमैगिलिन आदि औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

9.3. उद्देश्य—रिंगवर्म के कारक की पहचान करना तथा इससे होने वाले रोग पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी (Comments)—1. *ट्राइकोफाइटॉन, माइक्रोस्पोरम कैनिस* तथा *एपीडर्मोफाइटॉन* नामक **कवक** (fungus) के कारण त्वचीय रोग **डर्मेटोमाइकोसिस** (dermatomycosis) होता है। इसे सामान्य भाषा में **दाद** (ringworm) कहते हैं।

2. यह रोग कवक के बीजाणुओं (spores) के कारण फैलता है। बीजाणुओं का **प्रकीर्णन** वायु द्वारा होता है।

3. रोग का संक्रमण नम वस्त्रों से सामान्यतया **वर्षा ऋतु** में होता है। बीजाणु अंकुरित होकर हाइफा बनाते हैं जो त्वचीय छिद्रों से त्वचा के नीचे पहुँच जाते हैं। हाइफा पर बीजाणुओं के निर्माण के फलस्वरूप त्वचा पर **गोलाकार लाल धब्बे** बनने लगते हैं।

रोग के लक्षण (Symptoms of Disease)—1. त्वचा पर गोलाकार लाल धब्बे वृद्धि करके शल्की घाव बनाते हैं।

2. हर समय **जलन** तथा **खुजली** होती रहती है जिससे संक्रमण क्षेत्र निरन्तर बढ़ता रहता है।

3. नम तथा गर्म जलवायु में रोग तेजी से फैलता है।

रोकथाम एवं उपचार (Prevention and Treatment)—1. रोग के बचाव के लिए शारीरिक स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए।

2. कपड़े धुले एवं पूर्णरूप से सूखे (dry) होने चाहिए।

3. किसी रोगी या अन्य व्यक्ति के अण्डरगार्मेन्ट्स, तौलिया आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. उपचार हेतु औषधियाँ नियमित रूप से प्रयोग करनी चाहिए।

10. मरुद्भिद् परिस्थितियों में पाए जाने वाले पौधों एवं जन्तुओं के आकारिकी अनुकूलनों पर टिप्पणी करना।

10.1. उद्देश्य—ऑस्ट्रेलियन बबूल के शुष्कोद्भिद् लक्षणों पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह शुष्कोद्भिद्, काष्ठीय, बहुवर्षी, सदाबहार वृक्ष है।

(ii) इसके पर्णक नवोद्भिद् अवस्था में दिखते हैं और फिर शीघ्र ही झड़ जाते हैं। **पर्णवृन्त** (petiole) पत्ती सदृश होकर भोजन संश्लेषण करते हैं। इनको **पर्णाभवृन्त** (phyllode) कहते हैं।

(iii) पर्णाभवृन्त वाष्पोत्सर्जन को रोकने में सहायक होते हैं।

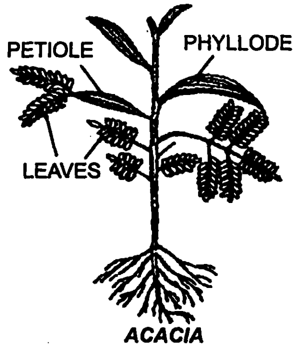

चित्र-*ऑस्ट्रेलियन बबूल* का नवोद्भिद्।

10.2. उद्देश्य—कोकोलोवा के शुष्कोद्भिद् लक्षणों पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—1. यह शुष्कोद्भिद्, बहुवर्षी पादप **कोकोलोबा** (Cocoloba : *Muehlenbeckia*) है।

2. तना चपटा तथा हरे रंग का होता है। तने पर **पर्व** तथा **पर्वसन्धियाँ** स्पष्ट होती हैं। चपटे तने को **पर्णाभ स्तम्भ** (phylloclade) कहते हैं।

3. पर्वसन्धियों से निकलने वाली शाखाएँ भी चपटी होती हैं। ये **शल्क पत्रों** के कक्ष से निकलती हैं।

4. **पत्तियाँ** प्राय: छोटी होती हैं। ये शीघ्र गिर जाती हैं।

5. रूपान्तरण जलहानि को रोकने का कार्य करता है।

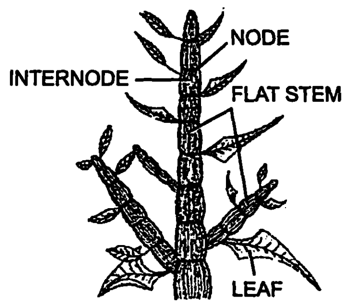

चित्र-कोकोलोबा का पर्णाभ स्तम्भ।

10.3. उद्देश्य—*कैमिलिऑन* के मरुद्भिद् लक्षणों पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह मरुद्भिद् परिस्थितियों में पाया जाने वाला सरीसृप है।

(ii) त्वचा शल्कों द्वारा घिरी होती है। त्वचा का रंग वातावरण के अनुसार बदलता रहता है।

(iii) इसकी जीभ लम्बी होती है। यह जीभ के द्वारा कीटों को पकड़ता है।

(iv) उत्सर्जी पदार्थों का निष्कासन ठोस रूप में मल के साथ होता है।

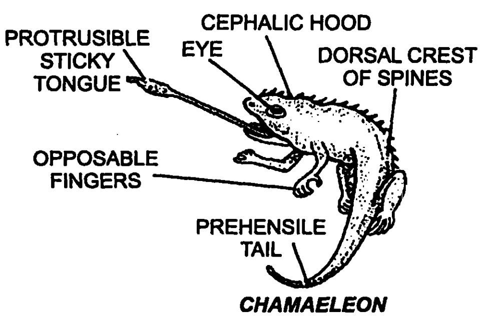

चित्र-*कैमिलिऑन*।

10.4. उद्देश्य—कंगारु चूहे के मरुद्भिद् लक्षणों पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—1. कंगारू चूहे (Kangaroo Rat) **मरुस्थली कृन्तक** होते हैं। ये दिन के समय गर्मी से बचने के लिए बिल में छिपे रहते हैं। रात्रि को भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं।

चित्र-कंगारू चूहा।

2. ये **शाकाहारी** होते हैं, बीजों को खाते हैं। ये पौधों के बीजों को खा जाते हैं, इस कारण रेगिस्तान में पौधे नहीं उगते। अत: इनको **की-स्टोन** (key stone) प्रजाति माना जाता है।

3. ये पानी नहीं पीते। इन्हें उपापचय क्रियाओं के फलस्वरूप अथवा भोजन से ही जल प्राप्त होता है।

4. ये उत्सर्जी पदार्थों का निष्कासन ठोस रूप में करके **जल का संरक्षण** करते हैं।

11. जलीय परिस्थितियों में पाए जाने वाले पौधों एवं जन्तुओं के आकारिकी अनुकूलनों पर टिप्पणी करना।

11.1. उद्देश्य—जलोद्भिद् पादप *वैलिसनेरिया* पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह एकलिंगाश्रयी (dioecious) जल-निमग्न पादप है।

(ii) इसका तना कमजोर तथा भूशायी (stolon) होता है। जड़ें पर्वसन्धियों से निकलती हैं और अल्पविकसित होती हैं।

(iii) पत्तियाँ फीतेनुमा तथा लम्बी होती हैं। रन्ध्रों का अभाव होता है।

(iv) जल का अवशोषण पादप शरीर सतह से होता है।

(v) श्लेष्म का आवरण पौधे को जल के दुष्प्रभाव से बचाता है।

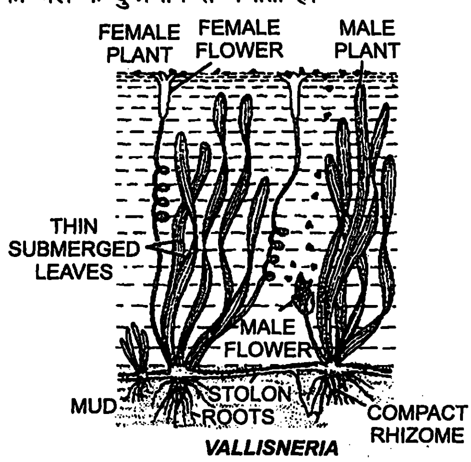

चित्र-*वैलिसनेरिया*।

11.2. उद्देश्य—जलोद्भिद् पादप *हाइड्रिला* पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(i) यह जल-निमग्न स्थिर जलीय पादप है। इसकी जड़ें अल्प-विकसित होती हैं।

(ii) पत्तियाँ छोटी-छोटी, पतली एवं तने पर चक्राकार क्रम में व्यवस्थित होती हैं।

(iii) वायूतक (aerenchyma) प्लवन में सहायक होता है। यान्त्रिक ऊतक का अभाव होता है।

(iv) संवहन ऊतक जाइलम अल्प-विकसित होता है।

(v) जल एवं घुलित पदार्थों का अवशोषण शरीर सतह से होता है।

चित्र-हाइड्रिला।

11.3. उद्देश्य—जलोद्‌भिद् जन्तु रोहू पर टिप्पणी करना।

टिप्पणी—(1) इसका शरीर नौकाकार एवं धारारेखित होता है।

(2) शरीर सिर, धड़ तथा पूँछ में विभेदित होता है। सिर पर पलक विहीन नेत्र होते हैं। नेत्र निमेषक झिल्ली से ढके होते हैं।

(3) शरीर श्लेष्मयुक्त शल्कीय आवरण से घिरा रहता है।

(4) श्वसन क्लोम (gills) द्वारा होता है।

(5) पख (fins) तैरने में सहायक होते हैं।

(6) फेफड़ों से वायु आशय (air bladders) लगे होते हैं। ये द्रव्य स्थैतिक सन्तुलन बनाए रखते हैं।

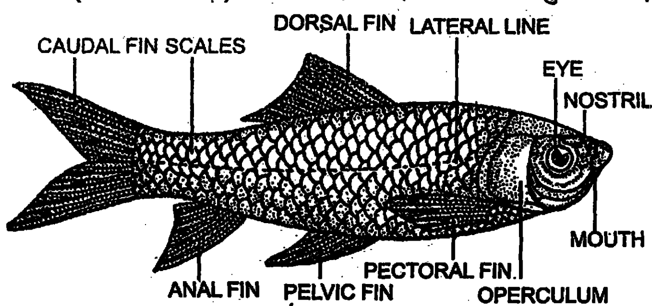

चित्र—रोहू मछली।

11.4. उद्देश्य—जलीय जन्तु *स्कोलिओडॉन* पर टिप्पणी करना।

लक्षण (Characters)—(1) यह समुद्री मांसाहारी शिकारी मछली है। इसे सामान्य भाषा में डॉगफिश कहते हैं।

(2) शरीर लम्बा, पार्श्वों में चपटा, तर्कुरूपी एवं धारारेखित होता है।

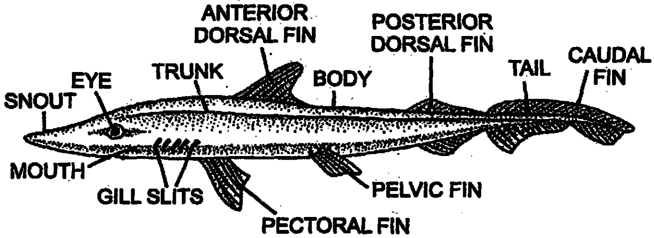

चित्र-*स्कोलिओडॉन* (पार्श्व दृश्य)।

(3) शरीर सिर, धड़ व पूँछ में बँटा होता है।

(4) शरीर के अगले सिरे पर नुकीला तुण्ड, मुखद्वार तथा एक जोड़ी नेत्र होते हैं। नेत्रों के पीछे पार्श्वों में 5-5 क्लोम दरारें होती हैं।

(5) शरीर पर तैरने के लिए **अंस पख**, **श्रोणि पख**, दो **मध्य पृष्ठ पख** व **एक पुच्छ पख** होते हैं।

(6) त्वचा **प्लैकॉएड शल्कों** (placoid scales) के कारण खुरदरी होती है।

(7) अन्त:कंकाल उपास्थि से बना होता है।

(8) एकलिंगी होती हैं। नर में मैथुन अंग **आलिंगक** (claspers) पाया जाता है। अन्त:संसेचन होता है।

(9) ये जरायुज होती हैं। इसमें योक सैक प्लासेन्टा होता है।

प्रोजेक्ट संख्या-1

उद्देश्य—परखनली शिशु तकनीक का अध्ययन।

परखनली शिशु तकनीक (Test tube baby technique) एक प्रकार की सहायक जनन प्रौद्योगिकी (Assisted Reproductive Technology—ART) है। इसे पात्रे निषेचन या इन विट्रो फर्टिलाइजेशन (in vitro fertilization— IVF) कहा जाता है।

इन विट्रो का शाब्दिक अर्थ है काँच के पात्र में। वास्तव में इस तकनीक में काँच के पात्र जैसे परखनली, पेट्रीडिश में अण्ड व शुक्राणु का निषेचन कराया जाता है अत: यह इन विट्रो कहलाती है।

इसका प्रचलित नाम टेस्ट ट्यूब बेबी है। यह नाम एक गलत अर्थ देता है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि बच्चे का जन्म परखनली में होता है लेकिन इस विधि में केवल निषेचन प्रयोगशाला में काँच के पात्र में किया जाता है तथा शिशु का जन्म पूरे सामान्य गर्भ धारण द्वारा होता है।

इन विट्रो फर्टिलाइजेशन तकनीक निम्न स्थितियों में अपनायी जा सकती है—

1. जब अण्डोत्सर्ग (ovulation) में बाधा हो।
2. जब अण्डवाहिनी (फैलोपियन नलिका) में बाधा हो।
3. निषेचन सामान्य न हो।
4. वीर्य सेचन/सम्भोग में बाधा हो।
5. अन्तर्रोपण में बाधा हो।

सर्वप्रथम परखनली शिशु तकनीक के माध्यम से **स्टेप्टो** एवं **एडवर्ड्स** (Steptoe and Edwords, 1978) ने प्रयास किया। इसके फलस्वरूप प्रथम परखनली शिशु (लड़की) **ल्यूसी जोय ब्राउन** (Louise Joy Brown) का जन्म हुआ।

अन्त:पात्रे निषेचन (In Vitro Fertilization : IVF) या **भ्रूण स्थानान्तरण** (Embryo Transfer : ET)— परखनली शिशु विकास की इस तकनीक के निम्नलिखित प्रमुख चरण होते हैं—

(i) सर्वप्रथम हॉर्मोन्स की सहायता से स्त्री के अण्डाशयों को एक साथ अनेक अण्डपुटिकाओं के विकास के लिए प्रेरित किया जाता है, जिससे एक साथ अनेक अण्डाणु प्राप्त किए जा सकें। इस कार्य के लिए FSH, मानव कोरिओनल गोनैडोट्रोपिन (Human Chorional Gonadotropin : HCG), मानव रजोनिवृत्ति गोनैडोट्रोपिन (Human Menopausal Gonadotropin : HMG) आदि हॉर्मोन्स का नियन्त्रित उपयोग किया जाता है।

(ii) अण्डाशय की परिपक्व अण्डपुटिकाओं से **पराध्वनि निर्देशक नलिका** (ultrasound guided tube) या **लैप्रोस्कोपिक उपकरण** (leproscopic apparatus) की सहायता से द्वितीयक अण्डक कोशिकाओं को चूषण खिंचाव (suction force) द्वारा प्राप्त करके पोषक तरल युक्त पेट्री डिश (petri dish) में निकाल लिया जाता है। फिर इन अण्डाणुओं को ऊष्मायित्र (incubator) में 37° C ताप पर 4-6 घण्टे तक रखा जाता है। इसके फलस्वरूप द्वितीयक अण्डक कोशिकाएँ परिपक्व अण्डाणुओं में बदल जाती हैं।

(iii) अण्डाणुओं के ऊष्मायन के पूर्ण होने से लगभग 2 घण्टे पहले पुरुष से वीर्य प्राप्त करके एक विशेष घोल द्वारा वीर्य को पतला करके इसका अपकेन्द्रण (centrifugation) करते हैं। इससे शुक्राणु सान्द्रित हो जाते हैं। सान्द्रित शुक्राणुओं में थोड़ा पोषक तरल मिलाकर पेट्री डिश को ऊष्मायन के लिए 45 मिनट के लिए ऊष्मायित्र (incubator) में रखा जाता है।

शुक्राणुओं के सान्द्रित घोल को अण्डाणुओं वाली पेट्री डिश में डालकर पुन: लगभग 18 घण्टे के लिए ऊष्मायन हेतु ऊष्मायित्र (incubator) में रख दिया जाता है। इस अवधि में शुक्राणुओं द्वारा अण्डाणुओं का **अन्त:पात्रे निषेचन** (in vitro fertilization) हो जाता है। निषेचन के फलस्वरूप बने **युग्मनजों** (zygotes) को वृद्धि तत्त्व युक्त अन्य पेट्री डिश में रखकर ऊष्मायन हेतु 24 घण्टे के लिए ऊष्मायित्र में रख देते हैं। इस अवधि में युग्मनज में विदलन प्रारम्भ हो जाता है, इसके फलस्वरूप **8 कोरकखण्डीय भ्रूण** बनता है।

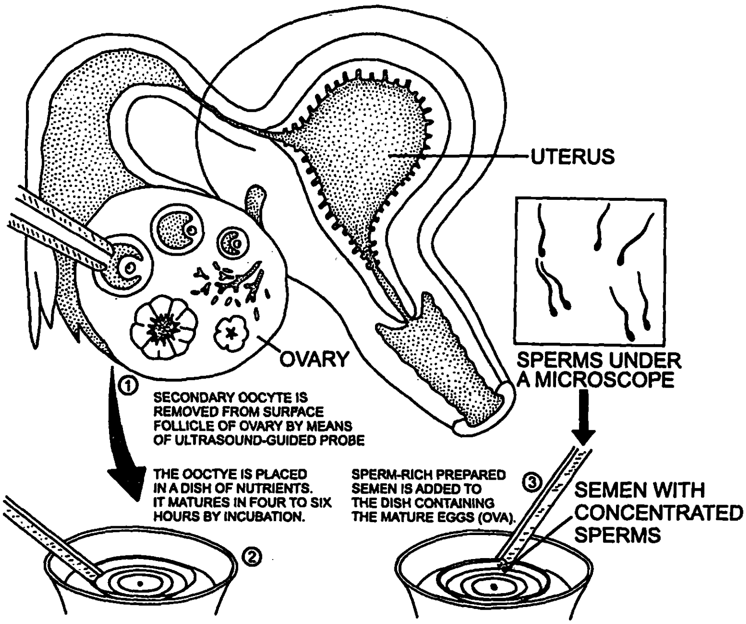

चित्र—अण्डाशय से द्वितीयक अण्डक कोशिकाओं को प्राप्त करना और इनका अन्तःपात्रे निषेचन का रेखाचित्र।

(iv) 8 कोरकखण्डीय भ्रूण को विशेष पिचकारी की सहायता से गर्भाशय में पहुँचा दिया जाता है। यह गर्भाशय की भित्ति में स्थापित होकर शीघ्र ही **अपरा** (placenta) का निर्माण प्रारम्भ कर देता है। अपरा से स्रावित मानव कोरिओनल गोनैडोट्रोपिन (Human Chorional Gonadotropin : HCG) का स्रावण बढ़ता जाता है। HCG की जाँच से ही गर्भाधारण की पुष्टि होती है।

अण्डाणुओं के अन्त:पात्रे निषेचन के लिए ऊष्मायन तकनीक के अतिरिक्त **अन्त:कोशिका-द्रव्यीय शुक्राणु अन्त:क्षेपण** (Intra Cytoplasmic Sperm Injection : ICSI) तकनीक का उपयोग भी किया जाता है। इस विधि में एक स्वस्थ शुक्राणु को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से पृथक् करके **माइक्रोमैनीपुलेटर** (micromanipulator) की सहायता से **माइक्रोइन्जेक्शन पिपेट** (microinjection pipette) द्वारा अण्डाणु में इन्जेक्ट कर दिया जाता है।

परखनली शिशु तकनीक का महत्त्व (Significance of Test Tube Baby Technique)—

1. बाँझपन समस्या का सबसे उपयुक्त समाधान है।
2. **शुक्राणु बैंक** में परिरक्षित किए गए अपने पति के शुक्राणुओं का उपयोग करके सन्तान प्राप्त की जा सकती है।
3. पर-पुरुष से लैंगिक सम्बन्ध स्थापित किए बिना इच्छित लक्षणों वाली सन्तान प्राप्त की जा सकती है।
4. भावी पीढ़ी के **आनुवंशिक लक्षणों** को सुधारा जा सकता है।

सन् 1985 में **ऑस्ट्रेलिया के मेलबोर्न** (Melbourne) शहर में IVF पर चौथी अन्तर्राष्ट्रीय सभा में बताया गया है कि तकनीकों में सुधार के कारण इस तकनीक से गर्भधारण सुगम हो गया है। भारतवर्ष में अनेक परखनली शिशु कृत्रिम प्रजनन केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। आज प्रत्येक बड़े शहर में टेस्ट ट्यूब बेबी केन्द्र है।

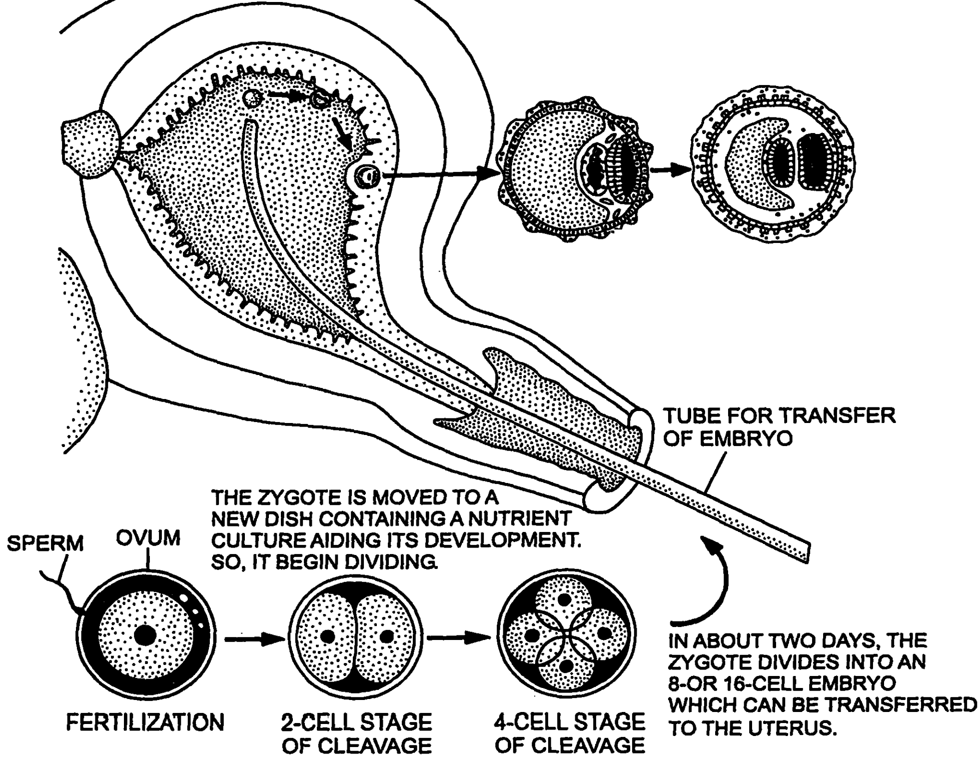

चित्र—अण्डाणु के निषेचन, युग्मनज के विदलन तथा भ्रूण के गर्भाशय में हस्तान्तरण एवं भ्रूण आरोपण का रेखाचित्र।

प्रोजेक्ट संख्या–2

उद्देश्य—मानव स्वास्थ्य (Human Health)।

स्वास्थ्य और मानव विकास किसी भी देश के सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। **स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय** प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, रोगों की रोकथाम और नियन्त्रण, परिवार कल्याण आदि राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए उत्तरदायी है। जनसमुदाय के स्वास्थ्य के लिए भारतीय संसद ने सन् 1983 में **राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति** (National Health Policy) को मंजूर किया था। इस नीति के तहत इस बात पर सहमति हुई थी कि आवश्यक स्वास्थ्य की देख-रेख के लिए **प्राथमिक स्वास्थ्य कल्याण कार्यक्रम** के माध्यम से समाज के प्रत्येक सदस्य को स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध हो। प्राथमिक स्वास्थ्य कल्याण के मूल तत्त्वों के अन्तर्गत पोषण, प्रतिरक्षण, प्राथमिक परिवार नियोजन, स्वच्छता, जल आपूर्ति, आवश्यक औषधियों की आपूर्ति, स्थानीय रोगों का नियन्त्रण, प्राथमिक स्वास्थ्य शिक्षा आदि आते हैं।

स्वास्थ्य एवं इसका महत्त्व
(Health and its Importance)

महान् दार्शनिक **अरस्तू** (Aristotle) ने कहा है **"स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है** (sound mind resides in a sound body) ।" स्वास्थ्य के बिना मानव-जीवन नीरस एवं अनुपयोगी हो जाता है। स्वास्थ्य मानव की अमूल्य निधि है। शुद्ध वातावरण, सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार, जल एवं दैनिक दिनचर्या आदि घटकों का प्रभाव मानव-स्वास्थ्य पर पड़ता है।

परम्परागत रूप से स्वास्थ्य को रोग के अभाव की स्थिति माना जाता है। परन्तु आजकल स्वास्थ्य को भिन्न प्रकार से परिभाषित किया जाने लगा है। "मनुष्य और उसके वातावरण के मध्य सन्तुलन की स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं।" सन्तुलन बिगड़

जाने की स्थिति **'रोग'** है। रोग केवल जैविक कारणों से ही नहीं, बल्कि सामाजिक कारणों से भी होते हैं। अत: **स्वास्थ्य** और **रोग** को समझने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों को भी जानना आवश्यक है। एक बहुत पुरानी कहावत है कि **रोकथाम उपचार से अच्छा विकल्प है** (prevention is better than cure)। रोग की रोकथाम व्यक्ति सुगमता से कर सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार स्वास्थ्य से तात्पर्य स्वस्थ वातावरण और स्वस्थ पारिवारिक परिवेश में स्वस्थ शरीर का प्रसन्न मन से है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और सामाजिक जीवन की क्षमता की पूर्णरूपेण समन्वयित स्थिति है। यह केवल रोग अथवा विकलांगता मुक्त होना नहीं है। अत: स्वास्थ्य के तीनों प्रमुख आयाम **शारीरिक, मानसिक** तथा **सामाजिक स्वास्थ्य** के मध्य तालमेल आवश्यक है।

(i) शारीरिक स्वास्थ्य (Physical health)—शरीर के प्रत्येक भाग की कार्यिकी का अन्य अंगों की कार्यिकी के मध्य पूर्ण समन्वय।

(ii) मानसिक स्वास्थ्य (Mental health)—मनुष्य के आचरण और वातावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियों के मध्य पूर्ण समन्वय।

(iii) सामाजिक स्वास्थ्य (Community health)—मनुष्य और उसके स्वच्छ एवं सन्तुलित परिवेश के मध्य पूर्ण समन्वय।

शरीर की अस्वस्थता (Unhealthy condition of body)—शरीर की वह दशा जब शरीर या इसके किसी भाग के सामान्य प्रकार्यों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। कुपोषण, आनुवंशिक विकार, रोगाणुओं का संक्रमण अथवा अन्य कारणों से शरीर के दैहिक, क्रियात्मक या मानसिक स्थिति में कोई ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि शरीर स्थायी सन्तुलन दशा को पुन: स्थापित नहीं कर पाता है, इस स्थिति को **रोग** कहते हैं। यह स्थिति किसी अंग विशेष या तन्त्र विशेष अथवा पूर्ण शरीर में हो सकती है।

अस्वस्थता के कारक (Factors of Unhealthy Condition)

1. जैविक कारक (Biological factors)—रोगोत्पादक वाइरस, जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, हैल्मिन्थ आदि।

2. पोषक कारक (Nutrient factors)—असन्तुलित आहार, पोषक तत्त्वों (खनिज, विटामिन्स आदि) की कमी या अधिकता आदि।

3. भौतिक कारक (Physical factors)—अत्यधिक सर्दी, गर्मी, नमी, प्रदूषक, घातक विकिरण, विद्युत आदि।

4. यान्त्रिक कारक (Mechanical factors)—अत्यधिक दबाव, घर्षण आदि के कारण मोच, अस्थिभंग, खरोंच आदि।

5. रासायनिक कारक (Chemical factors)—विभिन्न रासायनिक पदार्थ शरीर की कार्यिकी को प्रभावित करके शरीर को रोगी बनाते हैं। इन पदार्थों को दो समूहों में बाँट सकते हैं—(i) **अन्तर्जात पदार्थ** (endogenous materials), जैसे—यूरिया, कीटोन-काय (ketone bodies), बिलिरुबिन (bilirubin), हॉर्मोन्स आदि। (ii) **बहिर्जात पदार्थ** (exogenous materials); जैसे—धूल, बीजाणु, परागकण, कीटाणुनाशक रसायन, विषाक्त गैसें, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ आदि।

6. सामाजिक कारक (Social factors)—अन्धविश्वास, मानसिक तनाव, सामाजिक तनाव, दरिद्रता, मादक पदार्थों एवं धूम्रपान आदि की लत (addiction)।

रोगों के प्रकार (Types of diseases)—मानव रोगों को दो समूहों में बाँटा जाता है—

(A) जन्मजात रोग (Congenital diseases)—ये **आनुवंशिक अव्यवस्था** के कारण होते हैं। ये रोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागत होते हैं; जैसे—**हीमोफिलिया** (haemophilia), **दात्र कोशिका अरक्तता** (sickle cell anaemia), **फिनाइल कीटोन्यूरिया** (phenyl ketonuria) आदि।

(B) उपार्जित रोग (Acquired diseases)—ये रोग जन्म के पश्चात् विभिन्न कारणों से होते हैं। ये निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं—

1. संक्रामक या संचरणीय रोग (Infectious or Communicable diseases)—ये जैविक कारकों के संक्रमण से होते हैं; जैसे—जुकाम, फ्लु, स्वाइन फ्लू, चिकनगुनिया, चेचक, खसरा आदि। रोग उत्पन्न करने वाले कारक को **रोगाणु** (pathogen) कहते हैं। ये रोग वाइरस, जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ द्वारा होते हैं। ये रोगी से अन्य व्यक्तियों में फैलते हैं।

2. असंक्रामक या असंचरणीय रोग (Non-infectious or Non-communicable diseases)—ये रोग रोगी व्यक्ति से अन्य व्यक्ति में नहीं फैलते। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

(i) कुपोषण सम्बन्धी (Nutritional deficiency related)—ये आहार में किसी पोषक तत्त्व की कमी के कारण होते हैं; जैसे—बेरी-बेरी, स्कर्वी, रतौंधी, रक्ताल्पता, पेलाग्रा, क्वाशियॉरकर आदि।

(ii) एलर्जी (Allergy)—धूल, परागकण, बीजाणु, रेशम, नायलॉन व वायु में वाष्पशील पदार्थों के प्रति शरीर की अतिसंवेदनशीलता के कारण होती है।

(iii) अपह्रासित रोग (Degenerative diseases)—ये रोग हृदय, फेफड़ों, केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र आदि के ठीक प्रकार से कार्य न करने के कारण होते हैं; जैसे—कोरोनरी हृदय रोग, आर्टिरियोस्कलेरोसिस, रूमेटी हृदय, आर्थराइटिस आदि।

(iv) कैन्सर (Cancer)—शरीर के किसी भी भाग में **अविभेदित कोशिकाओं के समूह** एकत्र होकर **ट्यूमर** बनाते हैं। ये कोशिकाएँ बहुत तेजी से विभाजित होती हैं। कोशिकाओं के समूह (ट्यूमर) दो प्रकार के होते हैं—

(a) सुदम ट्यूमर (Benign tumours)—ये संयोजी ऊतक से घिरे रहने के कारण एक ही स्थान पर रहते हैं।

(b) दुर्दम ट्यूमर (Malignant tumours)—ट्यूमर की कोशिकाएँ लिम्फ व रुधिर के साथ संचरित होकर अन्य भागों में दुर्दम ट्यूमर बनाती हैं। धूम्रपान, तम्बाकू चबाना, भौतिक उत्तेजना, विभिन्न रसायनों, रेडियोधर्मी पदार्थों आदि के कारण प्राय: कैन्सर होने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं।

(v) मानसिक अव्यवस्थाएँ (Mental disorders)—अवसाद दुश्चिंता आदि की अधिकता, मदिरोन्मत्तता, ड्रग्स के सेवन आदि के कारण।

(vi) औद्योगिक या व्यावसायिक रोग (Industrial or Professional diseases)—औद्योगिक संस्थानों, खदानों आदि में कार्य करने वाले व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं; जैसे—सिलिकोसिस, एन्थ्राकोसिस, बिसिनोसिस, कृषक-फुफ्फुस आदि।

रोगों और इनके उपचार का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Diseases and their Cure)

प्राचीनकाल में मनुष्य वन्य जीवन व्यतीत करता था और जब वह रोगों से पीड़ित होता था तो दैवी प्रकोप अथवा दुष्ट आत्माओं को इसका जिम्मेदार समझता था। इसके लिए विभिन्न प्रकार के पूजा-पाठ, जादू-टोना, पशुबलि आदि की सहायता से स्वस्थ होने का प्रयास करता था।

मनुष्य ने ईसा से लगभग 800 वर्ष पूर्व रोगों के उपचार हेतु जड़ी-बूटियों का उपयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उपचार की **आयुर्वेदिक प्रणाली** का उदय हुआ। 10वीं सदी में मुस्लिम आक्रमणकारी ग्रीस की उपचार प्रणाली—**यूनानी टिब प्रणाली** (Unani tibb system) भारतवर्ष में लाए। 13वीं सदी में मुस्लिम शासकों द्वारा **यूनानी प्रणाली** (Unani system) का प्रयोग किया गया। सन् 1810 में जर्मनी में विकसित **होमियोपैथी** (homeopathic) **उपचार प्रणाली** प्रयोग में आई। 20वीं सदी में विज्ञान की अप्रत्याशित उन्नति के कारण मानव रोगों एवं स्वास्थ्य तथा इसके निदान एवं उपचार हेतु हमारे ज्ञान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज रोगों के उपचार हेतु आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथी तथा ऐलोपैथी उपचार पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। व्यक्तिगत स्वच्छता की परिकल्पना के साथ-ही-साथ **सार्वजनिक स्वास्थ्य की परिकल्पना** का जन्म सन् 1840 में इंग्लैण्ड में हुआ। आज व्यक्तियों के स्वास्थ्य के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के प्रयास व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर किए जाते हैं।

स्वास्थ्य हेतु व्यक्तिगत प्रयास (Individual Efforts for Health)

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए—

(1) सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार ग्रहण करना चाहिए।

(2) मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

(3) धूम्रपान, तम्बाकू (चबाना) सेवन नहीं करना चाहिए।

(4) दिनचर्या में स्वच्छता बरतनी चाहिए। अपने आवास एवं कार्यस्थल की स्वच्छता का ध्यान रखना भी अति आवश्यक है।

(5) संकटावस्था में मानसिक दबाव उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए। कार्य-क्षेत्र के मानसिक दबाव से भी स्वयं को बचाकर रखना चाहिए। इसके लिए अपने कार्यों को नियमित रूप से पूरा करते रहना आवश्यक है।

(6) स्वयं को दुर्घटनाओं से सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए।

(7) नियमित व्यायाम करना चाहिए।

(8) अस्वस्थ होने पर चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

सामाजिक या सामुदायिक स्वास्थ्य (Community Health)

रोगों की रोकथाम, जीवन-अवधि में वृद्धि, समुदाय के सदस्यों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य और कार्यक्षमता में सुधार के लिए सामाजिक स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं; जैसे—

(1) प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल।

(2) व्यक्तिगत स्तर पर स्वच्छता के लिए प्रेरित करना।

(3) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं की जानकारी।
(4) पर्यावरण की स्वच्छता।
(5) समुदाय के सदस्यों में संक्रमण की रोकथाम तथा महामारी को फैलने से रोकना।
(6) रोगों के उपचार हेतु अस्पतालों में नर्सों, चिकित्सकों की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
(7) ड्रग्स एवं ऐल्कोहॉल में व्यसित एवं मानसिक रोगियों का पुनर्वास।
(8) विद्यालयों में स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना आदि।

स्वास्थ्य हेतु राष्ट्रीय प्रयास (National Efforts for Health)

सरकार द्वारा व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य हेतु अनेक राष्ट्रीय परियोजनाएँ स्थापित की गयी हैं; जैसे—
(1) राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम
(2) राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियन्त्रण कार्यक्रम
(3) राष्ट्रीय नारू (guinea) उन्मूलन कार्यक्रम
(4) विफ्लोरिडीनीकरण (defluoridation) कार्यक्रम
(5) राष्ट्रीय घेंघा (goitre) नियन्त्रण कार्यक्रम
(6) हैजा (cholera) नियन्त्रण कार्यक्रम
(7) लैंगिक संचारित रोग (STD) और एड्स (AIDS) नियन्त्रण हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम
(8) राष्ट्रीय क्षय (tuberculosis) नियन्त्रण कार्यक्रम
(9) राष्ट्रीय कुष्ठरोग (leprosy) नियन्त्रण कार्यक्रम
(10) पोलियो (polio) उन्मूलन कार्यक्रम
(11) राष्ट्रीय रक्तक्षीणता—कार्यक्रम
(12) राष्ट्रीय विटामिन 'ए' उपचार कार्यक्रम आदि।

राष्ट्रीय स्तर पर समाज के स्वास्थ्य हेतु **स्वास्थ्य केन्द्र** (health center) खोले गए हैं। इनको तीन समूहों में वर्गीकृत किया जाता है—

1. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (Primary health centres)—यहाँ प्राथमिक उपचार व सामान्य रोगों के उपचार की सुविधा रहती है।

2. द्वितीयक स्वास्थ्य केन्द्र (Secondary health centers)—इसके अन्तर्गत तहसील और जिला स्तर पर खोले गए **चिकित्सालय** तथा **सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र** (community health centres) आते हैं। यहाँ स्वास्थ्य एवं रोगों से सम्बन्धित जटिल समस्याओं का समाधान किया जाता है।

3. तृतीय स्वास्थ्य केन्द्र (Tertiary health centres)—ये बड़े-बड़े चिकित्सालय होते हैं, जहाँ रोग विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा असाधारण रोगों का उपचार किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास (International efforts)—रोगों की कोई राजनैतिक या भौगोलिक सीमाएँ नहीं होतीं। ये विश्व के किसी भी भाग से सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी फैल सकते हैं। अत: मानव प्रजाति को रोगों से बचाए रखने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। **संयुक्त राष्ट्र संघ** (U.N.O.) के तत्त्वावधान में 7 अप्रैल, 1948 को **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (World Health Organization : WHO) का गठन किया गया। इसी कारण प्रति वर्ष 7 अप्रैल को **विश्व स्वास्थ्य दिवस** (World Health Day) मनाया जाता है।